उत्तर प्रदेश राज्य

बनाम

भागवंत किशोर जोशी

(के. सुब्बा राव, रघुबर दयाल और जे. और. मुधोलकर जे.जे)

आपराधिक विचारण – पुलिस उप-अधीक्षक से कम स्तर के पुलिस अधिकारी द्वारा अनुसंधान - मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति प्राप्त नहीं की गई - उचित जांच- ऐसी चूक यदि मुकदमे को दूषित करती है-भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 (1947 का 2), धारा 5ए -दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का अधिनियम 5), धारा 4 (1), 154, 157

प्रतिवादी एक बुकिंग क्लर्क था। उसने 49/1/0 रुपये के संबंध में आपराधिक न्यासभंग किया। उपर्युक्त सूचना की प्राप्ति पर पुलिस अधीक्षक ने उपनिरीक्षक एम. को निर्देशित किया। इसके बाद एम ने जानकारी में निहित आरोपों की जांच की गई प्रासंगिक रेलवे रिकॉर्ड पर एकत्र की गई जानकारी के आधार पर, उन्होने एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। एम ने बिना मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी का आदेश प्राप्त कर जांच का पहला चरण बनाया। इसके बाद, एम ने धारा 5ए के भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की

आवश्यकता के अनुसार मामले की जांच करने के लिए मजिस्ट्रेट, प्रथम की अनुमति प्राप्त की। उसके बाद उसने आगे की जांच की और आरोप पत्र प्रस्तुत किया। प्रतिवादी पर विशेष न्यायाधीश द्वारा मुकदमा चलाया गया और दोषी ठहराया गया। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत अपील पर उच्च न्यायालय ने मुख्य रूप से आधार पर दोषसिद्धि को रद्द कर दिया कि जांच का पहला चरण भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 ए के विपरीत था एवं यह माना जाएगा कि अभियुक्त को अधिनियम का उल्लंघन होने से गंभीर रूप से पूर्वाग्रहग्रस्त है।

अभिनिर्धारितः (सुब्बा राव और दयाल, जे.जे. के अनुसार), कि अपेक्षित अनुमति प्राप्त करने से पहले एम द्वारा की गई जांच का पहला चरण मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, अधिनियम के धारा 5 ए के अधीन, अर्थ के भीतर एक "जांच" थी का दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 (1). एम प्राप्त हुआ रिपोर्ट के माध्यम से अपराध की विस्तृत जानकारी अभियुक्त द्वारा आवश्यक रूप से अपराध किये जाने का आरोप है विवरण; वह अपराध स्थ की ओर आगे बढ़ा, रेलवे के माध्यम से जाकर संबंधित तथ्यों का पता लगाया अभिलेख, और एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। इन अधिनियमों का गठन किया गया की परिभाषा के अर्थ के भीतर एक जांच आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 4(1) के तहत "जांच" और इस प्रकार धारा 5 ए का भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम का उल्लंघन था।

इसके बाद एम ने पहले वाले दोष को ठीक किया प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की अनुमति प्राप्त करना कथित अपराध की जांच करें अभियुक्तों द्वारा और वास्तव में वहां व्यावहारिक रूप से कोई बदलाव नहीं किया गया के प्रावधानों के कड़ाई से अनुपालन में जांच दंड प्रक्रिया संहिता. वास्तव में, आरोपी ने ऐसा नहीं किया है पुलिस द्वारा की गई अवैधता से पूर्वाग्रहग्रस्त हो गया हूं जांच का पहला चरण. एक का दृढ़ विश्वास कुछ के आधार पर आरोपियों को अलग नहीं किया जा सकता जांच के मामले में अनियमितता या अवैधता.या तो पर्याप्त सांठगांठ स्थापित होनी चाहिए या संभाव्यता, दोषसिद्धि और अनियमितता के बीच जाँच - पड़ताल।

एचएन रिशबड और इंदर सिंह बनाम राज्य, दिल्ली, [1955] 1 एससीऔर 1150, पर निर्भर।

रे नानुमुरी आनंदय्या में, एआईऔर 1915 मैड। 312, पुनः में रंगराजुलु, एआईऔर 1958 मैड, 368 और राज्य केरल वीएम .,1. सैमुअल आईएलऔर 1960 केरल 783, संदर्भित।

मुधोलकर जे.--वास्तव में कोई दोष नहीं था। या प्रथम चरण की जांच में अनियमितता वस्तुतः जांच का अर्थ साक्ष्य एकत्र करना है स्थापित करने के लिए अपराध के कमीशन से संबंधित पराधी के विरुद्ध आरोप. यह पुलिस के लिए खुला है अधिकारी यह सुनिश्चित करने के लिए प्रारंभिक जांच करेंगे जानकारी की सत्यता. ऐसी प्रारंभिक जांच यह साक्ष्य एकत्र

करने के दायरे में नहीं आता है और इसलिए ऐसा नहीं हो सकता है जांच के रूप में माना जाता है।

एचएन रिशबड और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य [1955] 1 एससीऔर 1150, पर भरोसा किया।

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः अपराधी अपील सं. 171/1961

इलाहबाद उच्च न्यायालय (लखनऊ पीठ) की क्रिमीनल अपील सं. 643/1960 के निर्णय और आदेश दिनांकित 30 जनवरी, 1960 के विरुद्ध विशेष अनुमति से अपील और एल मेहता, जी सी माथुर और सी पी लाल, अपीलार्थी के लिए।

टी. और. भसीन, प्रत्यर्थी के लिए।

1963. 17 अप्रैल। सुब्बा राव और दयाल जे. जे. का निर्णय सुब्बा राव जे द्वारा पारित किया गया था। जे. मुधोलकर ने एक अलग निर्णय दिया।

सुब्बा राव जे. – विशेष अनुमति द्वारा यह अपील उच्च न्यायालय, इलाहाबाद, लखनऊ, खंडपीठ लखनऊ के विशेष न्यायाधीश (पश्चिम), लखनऊ के फैसले को रद्द करने के फैसले के खिलाफ निर्देशित है, जिन्होने आरोपी-प्रतिवादी को दोषी ठहराया और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (1947 का क्रमांक II) के 5 (2) (जिसे इसके बाद अधिनियम कहा जाएगा) के तहत उन्हें एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गई।

अभियोजन पक्ष का मामला संक्षेप में इस प्रकार है कि प्रतिवादी वर्ष 1955-56 में सहारनपुर में एक बुकिंग क्लर्क था। 22 अक्टूबर, 1955 से 26 मई, 1956 के बीच उन्होने 49/1/0. रुपये के संबंध में आपराधिक न्यासभंग किया। उक्त आरोपों के आधार पर आरोपी को अधिनियम की धारा 5 (1) (सी) सपठित धारा 5 (2) के तहत विचारण एवं सुनवाई के लिए के लिए विशेष न्यायाधीश के समक्ष भेजा गया था। विशेष न्यायाधीश के समक्ष अभियोजन पक्ष ने 124 तक के कई दस्तावेज़ दाखिल किये और 20 गवाहों से पूछताछ की। आरोपी ने उनके सामने स्वीकार किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए आरोप के अनुसार उसे रकम प्राप्त हुई थी, लेकिन दलील दी कि उसका कोई बेईमानी का इरादा नहीं था, और जो कमी पाई गई वह असावधानी और लापरवाही के कारण थी। विशेष न्यायाधीश ने सभी साक्ष्यों पर विचार किया और पाया कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों से यह स्थापित होता है कि अभियुक्त ने लोक सेवक के रूप में प्राप्त धनराशि का दुरुपयोग किया। उनके समक्ष दलील दी गई कि मामले की जांच सबइंस्पेक्टर माथुर द्वारा की गई है, जो कानून के तहत मामले की जांच करने के हकदार नहीं थे, क्योंकि वह उपाधीक्षक के पद से नीचे थे और इसलिए मुकदमा रद्द कर दिया गया था। विद्वान विशेष न्यायाधीश ने माना कि उक्त उप-निरीक्षक ने उचित प्राधिकारी से अपेक्षित अनुमति प्राप्त करने से पहले कोई जांच नहीं की थी और यदि उसने ऐसा किया भी तो यह स्थापित नहीं हुआ कि आरोपी इस

तरह की जांच से पूर्वाग्रहग्रस्त था। परिणाम स्वरूप उन्होने अभियुक्त को दोषी ठहराया और उपरोक्तानुसार सजा सुनाई। आरोपी की अपील पर, उच्च न्यायालय ने मुख्य रूप से इस आधार पर दोषसिद्धि को रद्द कर दिया कि उपनिरीक्षक माथुर ने मामले की जांच करने के लिए अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक), लखनऊ की अनुमति प्राप्त करने से पहले "जांच" की थी और उक्त जांच के रूप में अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन था, तो अभियुक्त को अधिनियम के उक्त उल्लंघन से गंभीर रूप से पूर्वाग्रहित होना माना जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने लापरवाही से यह भी कहा कि उसका यह मानना था कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के बचाव की उचित संभावना को समाप्त नहीं किया है। उक्त कारणों से उच्च न्यायालय ने आरोपी की दोषसिद्धि को रद्द कर दिया और ३ उसे बरी कर दिया। राज्य ने उच्च न्यायालय के उक्त फैसले के खिलाफ वर्तमान अपील को दायर किया है।

हमारे सामने एकमात्र सवाल यह था कि क्या उच्च न्यायालय ने इस आधार पर आरोपी को बरी करने का फैसला सही किया था कि मजिस्ट्रेट की अनुमति लेने से पहले सब-इंस्पेक्टर माथुर द्वारा की गई जांच ने पूरे मुकदमे को खराब कर दिया था।

राज्य के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि उक्त उप-निरीक्षक ने अपने द्वारा प्राप्त जानकारी की सच्चाई का पता लगाने के लिए केवल प्रारंभिक

जांच की और उसके बाद, मजिस्ट्रेट की अपेक्षित अनुमति प्राप्त करने के बाद उसने अपराध की जांच की और इसलिए, जांच के मामले में न तो कोई अवैधता थी और न ही कोई अनियमितता। आगे तर्क दिया कि, किसी भी दृष्टिकोण से, उच्च न्यायालय ने सबूतों के आधार पर दोषसिद्धि को बिना इस पर विचार किए और बिना किसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि क्या उक्त अनियमितता, यदि कोई हो, ने अभियुक्त को पूर्वाग्रहित किया था, को रद्द करने में गलती की।

दूसरी ओर, अभियुक्त-प्रतिवादी के विद्वान वकील ने हम पर यह मानने के लिए दबाव डाला कि जांच ऐसे मामले में विधानमंडल और इसलिए न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों की लगातार अवहेलना में की गई थी और बिना किसी सबूत के, आरोपी के प्रति पूर्वाग्रह मान लेना चाहिए।

इससे पहले कि हम प्रतिद्वंद्वी तर्कों की खूबियों पर विचार करें, जांच के मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा की गई कथित अनियमितता पर संक्षेप में ध्यान देना आवश्यक होगा।

26 अप्रैल, 1956 को रेलवे अनुभागीय अधिकारी, विशेष पुलिस स्थापना, लखनऊ एएन खन्ना ने पुलिस अधीक्षक, विशेष पुलिस स्थापना को रिपोर्ट भेजी, जिसमें कहा गया कि उन्हें एक स्रोत के माध्यम से जानकारी मिली थी कि अभियुक्त को हेराफेरी करने की आदत है । सरकारी

धन, उनके द्वारा किये गये गबन के कृत्यों के 7 उदाहरण देते हुए उन्हें सूचित किया कि यदि उचित जांच की गई तो गबन के कई और मामले सामने आएंगे। पीडब्लू 15 के अनुसार, विशेष पुलिस प्रतिष्ठान के पुलिस उप-निरीक्षक, माथुर का कहना है कि उक्त रिपोर्ट की प्राप्ति पर, उक्त पुलिस अधीक्षक ने उन्हें जांच करने का निर्देश दिया; और वह आगे कहते हैं कि जानकारी के आधार पर उन्होने रेलवे रिकॉर्ड की जाँच की, पाया कि जानकारी सही थी और उसके अनुसार एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद, 8 अक्टूबर, 1956 को उक्त उप-निरीक्षक ने मामले की जांच की अनुमति के लिए अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक), लखनऊ को आवेदन किया। 19 अक्टूबर, 1956 को उक्त मजिस्ट्रेट ने उन्हें जाँच करने की अनुमति दे दी। इसके बाद, उन्होने आगे की जांच की, दस्तावेजों को जब्त किया, गवाहों से बयान लिए और आखिरकार आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया।

पहला प्रश्न यह है कि क्या मजिस्ट्रेट की अनुमति प्राप्त करने से पहले उनके द्वारा की गई पूछताछ दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अर्थ में "जांच" थी। संहिता की धारा 154 किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा मौखिक या लिखित रूप से प्राप्त जानकारी को रिकॉर्ड करने का तरीका निर्धारित करती है। इसकी धारा 156 ऐसे अधिकारी को उसमें निर्धारित किसी भी संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए अधिकृत करती है। हालाँकि आमतौर पर जाँच एक पुलिस अधिकारी

द्वारा प्राप्त सूचना पर की जाती है, सूचना की प्राप्ति जाँच के लिए पूर्व शर्त नहीं है। धारा 157 जो ऐसी जांच के मामले में प्रक्रिया निर्धारित करती है, सूचना पर या अन्यथा शुरू की जा सकती है। उक्त प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि किसी पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी सूचना पर या अन्यथा जांच शुरू कर सकता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 (1) के तहत, "जांच" में इस संहिता के तहत एक पुलिस-अधिकारी या किसी व्यक्ति (मजिस्ट्रेट के अलावा) द्वारा किए गए साक्ष्य के संग्रह के लिए सभी कार्यवाही शामिल हैं, जो इसमें एक मजिस्ट्रेट द्वारा अधिकृत है।" एचएन रिशबड और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य (1) में इस न्यायालय ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अध्याय XIV के तहत जांच के लिए निर्धारित प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार किया:

"इस प्रकार, संहिता के तहत जांच में आम तौर पर निम्नलिखित चरण होते हैं: (1) घटनास्थल पर आगे बढ़ना, (2) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का पता लगाना, (3) संदिग्ध अपराधी की खोज और गिरफ्तारी, (4) संग्रह अपराध के घटित होने से संबंधित साक्ष्य जिसमें शामिल हो सकते हैं (ए) विभिन्न व्यक्तियों (अभियुक्तों सहित) की जांच करना और यदि अधिकारी उचित समझे तो उनके बयानों को लिखित रूप में प्रस्तुत करना, (बी) जब्ती के स्थानों की तलाशी जांच के लिए आवश्यक समझी जाने वाली चीजें और मुकदमे में पेश की जाने वाली चीजें, और (5) इस बारे में राय का गठन कि क्या एकत्र की गई सामग्री के आधार पर

आरोपी को मुकदमे के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करने का मामला है और यदि हां, तो आवश्यक कदम उठाए जाएंगे। इसके लिए धारा धारा 173 के तहत आरोप पत्र दाखिल किया जाएगा ।"

क्या सब-इंस्पेक्टर माथुर ने अधिनियम कि धारा 5ए के तहत मजिस्ट्रेट की अनुमति प्राप्त करने से पहले ऐसी जांच की थी? प्र. पी-113 से पता चलता है कि रेलवे अनुभागीय अधिकारी खन्ना को एक स्रोत के माध्यम से जानकारी मिली कि आरोपी कोरे कागज और अन्य टिकटों की बिक्री आय का हिसाब न देकर सरकारी धन का दुरुपयोग करने की आदत में था; इससे यह भी पता चलता है कि उक्त अधिकारी द्वारा प्राप्त जानकारी अस्पष्ट नहीं थी, बल्कि इसमें आरोपी द्वारा किए गए गबन के कृत्यों का सटीक विवरण शामिल था। 26 अप्रैल, 1956 को उन्होने पुलिस अधीक्षक, विशेष पुलिस प्रतिष्ठान, लखनऊ को प्राप्त सूचना की एक रिपोर्ट भेजी, जिसमें उन्हें संकेत दिया गया कि यदि उचित जांच की गई तो हेराफेरी के कई और मामले सामने आएंगे। उक्त रिपोर्ट प्राप्त होने पर मामला विशेष पुलिस प्रतिष्ठान, लखनऊ के पुलिस उपनिरीक्षक, उक्त माथुर को सौंपा गया। पीडब्लू 20 के रूप में वह उन कदमों का वर्णन करता है जो उसने उक्त रिपोर्ट में दी गई जानकारी के अनुसार उठाए थे। उन्होनेे खन्ना द्वारा दी गई जानकारी में निहित आरोपों का सत्यापन किया, स्टेशन मास्टर की अनुमति लेने के बाद संबंधित रेलवे रिकॉर्ड देखे और दी गई जानकारी को सही पाया.. एकत्र की गई जानकारी के आधार पर, उन्होने एक रिपोर्ट

प्रस्तुत की। लेकिन उसमें पूछताछ की पूरी जानकारी नहीं दी गई. उन्होने उक्त जांच के संबंध में कोई केस डायरी भी तैयार नहीं की। उक्त रिपोर्ट रिकार्ड में नहीं है। हम यह मान सकते हैं कि उप-निरीक्षक ने अपने साक्ष्य में जो कहा है उससे अधिक कुछ नहीं किया। फिर भी, पुलिस अधिकारी ने आवश्यक विवरण के साथ आरोपी द्वारा किए गए कथित अपराध की विस्तृत जानकारी प्राप्त की, अपराध स्थल पर गए, रेलवे रिकॉर्ड के माध्यम से प्रासंगिक तथ्यों का पता लगाया और उक्त की एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। उक्त कृत्यों से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 4 (1) के तहत "जांच" की परिभाषा के अर्थ में एक जांच कि गई है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा समझाया गया है। राज्य के विद्वान वकील ने अपने तर्क के समर्थन में जिन निर्णयों का हवाला दिया कि वर्तमान मामले में कोई जांच नहीं हुई थी, वे लक्ष्य से परे हैं। रे नानुमुरी आनंदय्या मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने निम्नलिखित तीन चरणों का वर्णन किया है जिनसे एक पुलिसकर्मी को साजिश के मामले में गुजरना पड़ता है:

"...सार्वजनिक सुरक्षा को प्रभावित करने वाली कोई दिलचस्प बात सुनता है और जो उसे सतर्क कर देता है; विवेकपूर्ण पूछताछ करता है, पता लगाता है और मुखबिरों को स्थापित करता है और क्विवाइव या लुकआउट के दूसरे चरण में होता है; और 'अंत में पर्याप्त जानकारी जुटाता है सूचना उसे किसी निश्चित चीज़ पर विचार करने में सक्षम बनाती है और

यही वह चरण है जब पहली सूचना दर्ज की जाती है और जब जांच शुरू होती है।"

उसके चरणों का यह ग्राफिक विवरण केवल इस सिद्धांत का पुनर्कथन है कि एक, अस्पष्ट जानकारी या एक गैर-जिम्मेदार अफवाह अपने आप में संहिता की धारा 154 या धारा 157 के तहत जांच का आधार के अर्थ के भीतर जानकारी का गठन नहीं करेगी। केरल राज्य बनाम एमजे सैमुअल[1] मामले में, केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने फैसला सुनाया कि, "यह एक सामान्य सिद्धांत के रूप में कहा जा सकता है कि जानकारी का हर टुकड़ा चाहे कितना भी अस्पष्ट, अनिश्चित और अप्रामाणिक क्यों न हो इसे प्रथम सूचना के रूप में केवल इस कारण से दर्ज किया जाना चाहिए कि ऐसी सूचना किसी अपराध के घटित होने के संबंध में पुलिस को प्राप्त होने वाली पहली सूचना थी।" पूर्ण पीठ ने यह स्पष्ट करने का भी ध्यान रखा कि किसी मामले में कोई बयान प्रथम सूचना रिपोर्ट का गठन करेगा या नहीं, यह तथ्य का प्रश्न है और यह उस मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। ये और ऐसे अन्य निर्णय इस प्रश्न के संदर्भ में दिए गए थे कि क्या दी गई जानकारी के अर्थ में पहली सूचना थी। संहिता के 154: वे इस प्रश्न पर विचार करने में अधिक प्रासंगिक नहीं हैं कि क्या किसी विशेष मामले में एक पुलिस अधिकारी ने एस के अर्थ के भीतर एक संज्ञेय अपराध की जांच की है। संहिता के 157;यह पुलिस अधिकारी द्वारा प्राप्त

1 आईएल और, 1960 केरल 783

जानकारी की प्रकृति और उसके द्वारा (1) के लिए उठाए गए कदमों पर निर्भर करेगा। सूचना की सत्यता का पता लगाना और अपराध का पता लगाना।

इस मामले में, प्राप्त जानकारी स्पष्ट और सटीक थी और उप-निरीक्षक, उक्त जानकारी के आधार पर, आरोपों की सच्चाई की जांच करने के लिए मौके पर गए और वास्तव में अपराध का पता लगाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए। इसलिए, हमारा मानना है कि पुलिस उप-निरीक्षक ने मजिस्ट्रेट की अपेक्षित अनुमति प्राप्त करने से पहले अपराध की जांच की।

अधिनियम की धारा 5 ए पढ़ती है:

"दंड प्रक्रिया संहिता , 1898 में किसी भी बात के बावजूद , कोई भी पुलिस अधिकारी निम्न रैंक का नहीं होगा--

क्सक्सक्स एक्स एक्स

(सी) अन्यत्र, पुलिस उपाधीक्षक, भारतीय दंड संहिता की धारा 161 , धारा 165 , या धारा 165 ए के तहत या इस अधिनियम की धारा 5 की उप-धारा (2) के तहत दंडनीय किसी भी अपराध की बिना आदेश के जांच करेगा। एक प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, या वारंट के बिना कोई गिरफ्तारी कर सकते हैं;"

धारा से यह स्पष्ट है कि पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे का कोई अधिकारी प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना अधिनियम के प्रावधानों के तहत दंडनीय अपराध की जांच नहीं कर सकता है। उक्त धारा का दायरा और उक्त प्रावधान के अंतर्निहित कारण और अन्य पर इस न्यायालय द्वारा मध्य प्रदेश राज्य बनाम मुबारक अली[2] में विचार किया गया था। उसमें कहा गया था कि लोक सेवक की रक्षा और उत्पीड़न से बचाने के उद्देश्य के लिए 1952 के अधिनियम 59 द्वारा अधिनियम में धारा 5 ए डाला गया था। इस न्यायालय ने आगे कहा कि उक्त वैधानिक सुरक्षा उपायों का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए, क्योंकि उनकी कल्पना सार्वजनिक हित में की गई थी और उन्हें तुच्छ और कष्टप्रद अभियोजन के खिलाफ गारंटी के रूप में प्रदान किया गया था। नियम का कारण इस प्रकार, पृष्ठ 208 पर दिया गया था :

"जबकि सुनिश्चित स्थिति और रैंक के एक अधिकारी के मामले में, विधायिका उस पर पूरी तरह से विश्वास करने के लिए तैयार थी, इसने उस रैंक से नीचे के पुलिस अधिकारियों के मामले में एक अतिरिक्त गारंटी निर्धारित की, अर्थात्, एक प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट या मजिस्ट्रेट का पिछला आदेश प्रथम श्रेणी का, जैसा भी मामला हो.. मजिस्ट्रेट की स्थिति जांच की प्रामाणिकता का आश्वासन देती है।"

---

2 एस. (1) [1959] 2 एससीऔर 201

क़ानून के स्पष्ट और अभिव्यक्त प्रावधानों के बावजूद, वर्तमान मामले में उप-निरीक्षक ने मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी के आदेश प्राप्त किए बिना एक लोक सेवक द्वारा किए गए कथित अपराध की जांच की। हम आशा और विश्वास करते हैं अधिनियम के तहत जांच के प्रावधानों के कड़ाई से अनुपालना की जाएगी।

लेकिन इस मामले में पुलिस अधिकारी को अपने कर्तव्य का एहसास तब हुआ जब उसने अपराध की कुछ जांच की और दोष को सुधारने में जल्दबाजी की। मिली जानकारी के आलोक में उन्होने रेलवे रिकार्ड का सत्यापन करने के बाद मामला दर्ज कराया। इसके बाद 8 अक्टूबर, 1956 को उन्होने अपराध की जांच की अनुमति के लिए अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक), लखनऊ को आवेदन दिया। उसमें उन्होने बताया कि विशेष पुलिस स्थापना की लखनऊ शाखा के लिए कोई पुलिस उपाधीक्षक तैनात नहीं किया गया था। उस आवेदन में पुलिस अधीक्षक ने उस कथन का समर्थन किया और आगे बताया कि वह अन्य महत्वपूर्ण मामलों और प्रशासनिक कर्तव्यों की देखरेख में व्यस्त थे। मजिस्ट्रेट ने उक्त तथ्यों के आधार पर 19 अक्टूबर, 1956 को सब-इंस्पेक्टर को अपराध की जाँच करने की आवश्यक अनुमति दे दी। इसके बाद उप-निरीक्षक ने विस्तृत जांच की, गवाहों के बयान लिए, संबंधित कागजात जब्त किए, आवश्यकता पड़ने पर विशेष पुलिस प्रतिष्ठान की अन्य शाखाओं के माध्यम से जांच कराई और उसके बाद आरोप पत्र प्रस्तुत किया। संक्षेप में, मजिस्ट्रेट की अनुमति लेने

के बाद, उन्होने दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का कड़ाई से अनुपालन करते हुए व्यावहारिक रूप से एक नई जांच शुरू की। दरअसल, उक्त अनुमति देने के बाद जांच के मामले में दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के किसी भी दोष या उल्लंघन को इंगित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। जांच के बाद आरोपी पर विशेष न्यायाधीश द्वारा मुकदमा चलाया गया। अभियोजन पक्ष ने 20 गवाहों की जांच की और 124 साक्ष्य दाखिल किए। बचाव पक्ष ने 3 गवाहों से पूछताछ की। विद्वान विशेष न्यायाधीश, संपूर्ण साक्ष्यों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के अपराध को उजागर कर दिया है।

इन परिस्थितियों में सवाल यह है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर दोषसिद्धि को रद्द करना उचित था कि जांच का पहला चरण अधिनियम के प्रावधानों के विपरीत था।

प्रतिवादी के लिए विद्वान वकील के तर्क को इस प्रकार विस्तृत किया जा सकता है: जब भी जांच के मामले में आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों की लगातार उपेक्षा होती है, तो लगभग सभी मामलों में यह माना जाना चाहिए कि इसने आरोपी के प्रति पूर्वाग्रह पैदा किया है। मुकदमे का मामला, अन्यथा यह पुलिस उपाधीक्षक स्तर से नीचे के पुलिस अधिकारी को पुलिस शक्तियों के दुरुपयोग को रोकने के लिए तैयार किए गए वैए वैधानिक सुरक्षा उपायों से मुक्त जांच करने , आवश्यक जानकारी

सुरक्षित करने और उसके बाद अपेक्षित कार्रवाई करने में सक्षम करेगा। मजिस्ट्रेट की अनुमति और फिर वांछित परिणाम प्राप्त करने या अपनी योजना को लागू करने के लिए अपनी जांच को आकार देना। निःसंदेह यह प्रथा, यदि अस्तित्व में है, तो इसकी निंदा की जानी चाहिए; लेकिन सवाल यह है कि क्या जांच के मामले में अधिनियम के लाभकारी प्रावधानों का उल्लंघन, बिना और अधिक, मुकदमे को अमान्य कर देता है? यदि हम विद्वान वकील द्वारा दिए गए व्यापक प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं, तो हम स्ह इ सके प्रावधानों की अवहेलना करेंगे। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा **537;** हम पुलिस द्वारा कर्तव्य में लापरवाही के आधार पर ठोस सबूतों के एक ईमानदार समूह की अनदेखी कर रहे होंगे। सवाल यह नहीं है कि क्या किसी अपराध की जांच में पुलिस ने अधिनियम के प्रावधानों की अवहेलना की है, बल्कि सवाल यह है कि क्या मुकदमे में अपने बचाव के मामले में इस तरह की उपेक्षा से आरोपी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसलिए, अभियुक्त के लिए यह उचित संदेह करना आवश्यक है कि अभियोजन साक्ष्य ऐसा है कि उसे जांच के मामले में अनियमितता के कारण हेरफेर या आकार दिया गया होगा, या ऐसी अनियमितता के कारण उसे रोका गया था अपना बचाव प्रस्तुत करना या उसके समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करना। लेकिन जहां अभियोजन पक्ष के सबूतों को सच माना गया है और जहां अभियुक्त को मामले में पूरा अधिकार था, जांच के मामले में कुछ अनियमितता या अवैधता के आधार

पर दोषसिद्धि को स्पष्ट रूप से रद्द नहीं किया जा सकता है: पर्याप्त सांठगांठ होनी चाहिए, दोषसिद्धि और जांच में अनियमितता के बीच या तो स्थापित या संभावित है। इस मामले में, जैसा कि हमने पहले बताया है, न केवल मुकदमा निष्पक्ष था और सबूत ठोस थे, बल्कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के कड़ाई से अनुपालन में व्यावहारिक रूप से नए सिरे से जांच करके पहले के दोष को भी सुधारा गया था। इसलिए, हम यह नहीं मान सकते कि आरोपी अवैधता से पूर्वाग्रहग्रस्त है जांच के पहले चरण में पुलिस द्वारा प्रतिबद्ध,

उच्च न्यायालय ने इस आधार पर दोषसिद्धि को खारिज कर दिया कि अधिनियम के अनिवार्य सुरक्षा उपायों का उल्लंघन था, क्योंकि जांच का पहला चरण इसके विपरीत था। अधिनियम के प्रावधान. लेकिन इसने दूसरे प्रश्न पर विचार नहीं किया कि क्या उक्त उल्लंघन के कारण अभियुक्त को उसके मुकदमे के मामले में पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा। ऐसा करते हुए, उच्च न्यायालय ने धारा के प्रावधानों की अनदेखी की। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 537 उपरोक्त कारणों से रिकॉर्ड को ध्यान से देखने के बाद, हम संतुष्ट हैं कि आरोपी के साथ ऐसा कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है। उनकी निष्पक्ष सुनवाई हुई और उन्होनेे अपनी पूरी बात कही। इसलिए, हम उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हैं और प्रतिवादी को अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत दोषी ठहराते हैं और उसे एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा से दंडित करते हैं।

मुधोलकर जे.--मैंने सुब्बा राव, द्वारा तैयार किए गए फैसले का अध्ययन किया है, और मैं उनसे सहमत हूं कि अपील को स्वीकार किया जाना चाहिए और प्रतिवादी जो प्रासंगिक समय में सहारनपुर में बुकिंग क्लर्क था, को दोषी ठहराया जाना चाहिए और सजा सुनाई जानी चाहिए। उनके द्वारा प्रस्तावित. मैं इस बात से भी सहमत हूं कि केवल जांच में अनियमितता किसी आरोपी व्यक्ति की सजा को रद्द करने का आधार नहीं होगी जब तक कि अदालत इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि आरोपी उसके प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त है। हालाँकि, मुझे उनके इस निष्कर्ष से सहमत होना मुश्किल लगता है कि वास्तव में इस मामले की जांच में कोई दोष या अनियमितता थी।

इस बिंदु से निपटने के उद्देश्य से उन सभी तथ्यों को सामने रखना आवश्यक नहीं है, जो मेरे विद्वान भाई के निर्णय में पूरी तरह से प्रकट होते हैं। इसलिए, मैं केवल उन्हीं तथ्यों को सामने रखूंगा जिनका इस बिंदु पर प्रभाव पड़ता है।

रेलवे अनुभागीय अधिकारी, विशेष पुलिस स्थापना, लखनऊ से एक रिपोर्ट प्राप्त होने पर, जिसमें कहा गया था कि उन्हें एक अज्ञात स्रोत के माध्यम से जानकारी मिली थी कि प्रतिवादी को सरकारी धन का दुरुपयोग करने की आदत है, पुलिस अधीक्षक, विशेष पुलिस स्थापना ने उप-निरीक्षक को निर्देशित किया। माथुर को प्रतिवादी के खिलाफ लगाए गए आरोपों की

सच्चाई की जांच करने के लिए कहा। इसके बाद माथुर सहारनपुर रेलवे स्टेशन गए और उचित प्राधिकारी की अनुमति से कुछ रेलवे रिकॉर्ड देखे और अपने वरिष्ठ को इस आशय की एक रिपोर्ट सौंपी कि प्रतिवादी के खिलाफ लगाए गए आरोप सही प्रतीत होते हैं। इसके बाद उन्होनेे अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक), लखनऊ से मामले की जांच करने की अनुमति प्राप्त की, जैसा कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 ए और फिर आसानी से जांच के लिए आगे बढ़े। उच्च न्यायालय ने माना कि जांच की अनुमति प्राप्त करने से पहले सबइंस्पेक्टर माथुर ने जो किया वह जांच के अलावा कुछ नहीं था और उन्होने कुछ ऐसा किया था जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5ए के तहत निषिद्ध है। इसलिए, उच्च न्यायालय के अनुसार पूरी जांच ख़राब हो गई थी और परिणामस्वरूप प्रतिवादी की दोषसिद्धि और सज़ा बरकरार नहीं रखी जा सकी।

जाँच क्या है यह दंड प्रक्रिया संहिता में परिभाषित नहीं है; लेकिन एचएन रिशबड और इंद्र सिंह बनाम दिल्ली राज्य[3] मामले में, इस कोर्ट ने जांच की प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार किया है:

"इस प्रकार, संहिता के तहत जांच में आम तौर पर निम्नलिखित चरण होते हैं':(1) घटनास्थल पर आगे बढ़ना, (2) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का पता लगाना, (3) संदिग्ध अपराधी की खोज और गिरफ्तारी, (4) अपराध के कमीशन से संबंधित साक्ष्य का संग्रह जिसमें

3 (1) [1955] 1 एससीऔर 1150

(ए) विभिन्न व्यक्तियों की परीक्षा शामिल हो सकती है। अभियुक्त) और उनके बयानों को लिखित रूप में कम करना, यदि अधिकारी उचित समझे, (बी) जांच के लिए आवश्यक समझी जाने वाली और मुकदमे में पेश की जाने वाली चीजों की जब्ती के स्थानों की खोज, और (5) राय का गठन एकत्र की गई सामग्री के आधार पर क्या आरोपी को सुनवाई के लिए मजिस्ट्रेट के सामने रखने का कोई मामला है और यदि हां, तो धारा 173 के तहत आरोप-पत्र भरकर इसके लिए आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं। ' '

हालाँकि, इस न्यायालय ने यह नहीं कहा है कि यदि कोई पुलिस अधिकारी उसके द्वारा बताए गए कदमों में से केवल एक या दो कदम उठाता है, तो उसने जो किया है उसे आवश्यक रूप से जांच माना जाना चाहिए। वास्तव में जांच का अर्थ अपराध के घटित होने से संबंधित साक्ष्य एकत्र करना है? इस उद्देश्य के लिए, जांच अधिकारी उन व्यक्तियों से पूछताछ करने का हकदार है, जो उसकी राय में, किए गए अपराध पर प्रकाश डालने में सक्षम हैं और इसी तरह वह संदिग्ध से पूछताछ करने का हकदार है और पूछताछ किए गए व्यक्तियों के बयानों को कम करने का हकदार है। उसे लिखने के लिए या वह अपराध के स्थान की तलाशी लेने और अपराध से संबंधित वस्तुओं को जब्त करने के उद्देश्य से अन्य स्थानों की तलाशी लेने का भी हकदार है। इसमें कोई शक नहीं। इस प्रयोजन के लिए उसे उस स्थान पर जाना होगा जहां अपराध किया गया था। विभिन्न

अन्य चीजें लेकिन जांच का मुख्य उद्देश्य अपराधी तक अपराध पहुंचाना है, इस संबंध में एक जांच अधिकारी के कर्तव्यों का अनिवार्य हिस्सा, अपराधी को गिरफ्तार करने के अलावा, अपराधी के खिलाफ आरोप स्थापित करने के लिए आवश्यक सभी सामग्री एकत्र करना है। केवलि कि किसी अज्ञात स्रोत या संदिग्ध विश्वसनीयता के स्रोत से जानकारी प्राप्त होने पर जानकारी की सत्यता की जांच करने के लिए कुछ प्रारंभिक पूछताछ करना साक्ष्य एकत्र करना नहीं है और इसलिए इसे जांच नहीं माना जा सकता है। संहिता में व्यक्त या निहित किसी भी निषेध के अभाव में, मेरी राय है कि एक पुलिस अधिकारी के लिए अपराध दर्ज करने और उसमें पूर्ण पैमाने पर जांच करने से पहले प्रारंभिक पूछताछ करना खुला है। इसमें कोई शक नहीं, एस. भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम की धारा 5ए एक सरकारी कर्मचारी को उत्पीड़न रोकने के लिए अधिनियमित किया गया था और इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति के अलावा, उपाधीक्षक के पद से नीचे के किसी पुलिस अधिकारी द्वारा जांच करने की अनुमति नहीं है। हालाँकि, जहां एक पुलिस अधिकारी कुछ प्रारंभिक पूछताछ करता है, किसी आरोपी को गिरफ्तार नहीं करता है या पूछताछ नहीं करता है या किसी गवाह से पूछताछ नहीं करता है, बल्कि केवल कुछ विवेकपूर्ण पूछताछ करता है या बिना कोई नोट किए कुछ दस्तावेजों को देखता है, यह कल्पना करना मुश्किल है कि किसी भी संभावित उत्पीड़न या यहां तक कि इससे संदिग्ध या आरोपी व्यक्ति को शर्मिंदगी भी उठानी

पड़ेगी। यदि किसी पुलिस अधिकारी की कार्रवाई से अभियुक्त को कोई उत्पीड़न नहीं होता है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि इससे अंतर्निहित उद्देश्य विफल हो गया है। इस मामले को इस तरह से देखते हुए, मेरा मानना है कि माथुर ने जो किया वह जांच से बहुत कम था। इसलिए धारा 5 ए के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं किया गया। चूँकि उसके द्वारा कोई अनियमितता नहीं की गई थी इसलिए संहिता की उपचारात्मक प्रावधानों की सहायता लेने का कोई अवसर नहीं है।०

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद और्टिफिशयल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी निखिल कुमार नाड (और.जे. 1146)न्यायाधिकारीरूपवास, जिला भरतपुर, राज० द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।